विभाजन केंद्रित उपन्यासों में चित्रित स्त्री जीवन की त्रासदी, संघर्ष और मानवीय पक्ष

डॉ. विनीता रानी,
सहायक आचार्य,
विभाग–हिन्दी, संघटक राजकीय महाविद्यालय पूरनपुर, पीलीभीत।

शोध सारांश

सन् १९४७ का भारत-पाकिस्तान विभाजन केवल एक भौगोलिक या राजनीतिक बँटवारा नहीं था, बल्कि यह मानव इतिहास की सबसे बड़ी त्रासदियों में से एक था। इतिहास के पन्नों में राजनीतिक समझौते और मृतकों के आंकड़े तो दर्ज हो गए, किंतु उस अमानवीय विस्थापन, सांप्रदायिक उन्माद और मनोवैज्ञानिक आघात का सबसे प्रामाणिक दस्तावेज़ साहित्य ने सहेजा। इस त्रासदी की सबसे बड़ी भुक्तभोगी स्त्रियाँ थीं, जिनकी देह को दोनों संप्रदायों ने अपने 'प्रतिशोध' और 'शौर्य' का रणक्षेत्र बना दिया था। प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य हिंदी और भारतीय भाषाओं के प्रमुख उपन्यासों (जैसे- झूठा सच, तमस, पिंजर, आधा गाँव आदि) के आलोक में विभाजन के दौरान स्त्री की पीड़ा, अपहरण, शीलभंग, पुनर्वास की विडंबनाओं और इन सबके बीच उनके जीवट (संघर्ष) व मानवीय संवेदनाओं का सूक्ष्म एवं आलोचनात्मक विश्लेषण करना है। यह अध्ययन दर्शाता है कि विभाजनकालीन उपन्यासों में स्त्री केवल एक पीड़ित (Victim) नहीं है, बल्कि पितृसत्ता और सांप्रदायिकता के दोहरे पाटों के बीच पिसते हुए भी वह अदम्य जिजीविषा का प्रतीक है।

बीजशब्द: *भारत-पाक विभाजन, स्त्री त्रासदी, विस्थापन, अस्मिता का संकट, पुनर्वास, जिजीविषा, मानवीय संवेदना।*

प्रस्तावना (Introduction)

१९४७ का विभाजन भारतीय उपमहाद्वीप के सीने पर खिंची वह खूनी लकीर है, जिसका दर्द साहित्य में बार-बार रिसता रहा है। जब देश आज़ादी का जश्न मना रहा था, तब उसी आज़ादी की वेदी पर लाखों निर्दोष लोग बलि चढ़ाए जा रहे थे। इस अमानवीय सांप्रदायिक उन्माद में, जहाँ एक ओर हत्या, लूटपाट और आगज़नी का नंगा नाच चल रहा था, वहीं दूसरी ओर स्त्री की अस्मिता को तार-तार किया जा रहा था।

इतिहासकार ज्ञानेंद्र पांडेय ने सही ही रेखांकित किया है कि:

"विभाजन के दौरान स्त्री केवल एक नागरिक नहीं रह गई थी; वह 'हिंदू', 'मुसलमान' या 'सिख' की 'इज़्ज़त' (Honor) बन गई थी। जब भी किसी समुदाय को दूसरे समुदाय को अपमानित करना होता, तो उसका सबसे आसान लक्ष्य दूसरे समुदाय की स्त्रियाँ होती थीं।"

विभाजन केंद्रित उपन्यासों—चाहे वह यशपाल का 'झूठा सच' हो, भीष्म साहनी का 'तमस', अमृता प्रीतम का 'पिंजर', राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव' हो या कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान'—इन सभी में स्त्री जीवन की जो त्रासदी चित्रित हुई है, वह रोंगटे खड़े कर देने वाली है। लेकिन यह साहित्य केवल क्रूरता का आख्यान नहीं है; यह उस क्रूरता के बीच बची रह गई मानवीयता, स्त्री के अदम्य संघर्ष और उसकी अपने अस्तित्व को बचाए रखने की लड़ाई का भी प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

शोध का उद्देश्य (Objectives of the Study)

प्रस्तुत शोध पत्र निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निर्देशित है:

1. विभाजन केंद्रित उपन्यासों में चित्रित स्त्री के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक शोषण

(त्रासदी) के विविध आयामों का विश्लेषण करना।

2. यह स्थापित करना कि सांप्रदायिक उन्माद के समय स्त्री की देह किस प्रकार 'सामुदायिक इज़्ज़त' और 'प्रतिशोध' के रणक्षेत्र में तब्दील कर दी गई।
3. 'पुनर्वास' (Recovery of Abducted Women) की सरकारी नीतियों और पितृसत्तात्मक समाज द्वारा लूटी गई स्त्रियों के अस्वीकार (Rejection) की दोहरी त्रासदी का अध्ययन करना।
4. इन उपन्यासों में स्त्री के संघर्ष, उसकी जिजीविषा (Survival instinct) और क्रूरता के बीच उपस्थित 'मानवीय पक्षों' (Humanistic elements) को रेखांकित करना।

शोध प्रविधि (Research Methodology)

इस शोध कार्य के लिए 'विश्लेषणात्मक' (Analytical), 'नारीवादी' (Feminist) और 'समाजशास्त्रीय साहित्यिक' (Socio-Literary) प्रविधि का प्रयोग किया गया है। विभाजन पर लिखे गए प्रतिनिधि उपन्यासों का प्राथमिक स्रोत (Primary Sources) के रूप में सूक्ष्म पाठ-विश्लेषण (Textual analysis) किया गया है। साथ ही, उर्वशी बुटालिया (*The Other Side of Silence*), रितु मेनन और कमला भसीन (*Borders & Boundaries*) जैसे समाजशास्त्रियों और विचारकों के विभाजन संबंधी विमर्शों (Secondary Sources) का उपयोग साहित्य में चित्रित यथार्थ को ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक कसौटी पर कसने के लिए किया गया है।

विभाजन का ऐतिहासिक संदर्भ और स्त्री (Historical Context of Partition and Women)

विभाजन की त्रासदी को समझने के लिए उस समय के ऐतिहासिक यथार्थ और पितृसत्तात्मक संरचना को समझना अनिवार्य है। १९४७ में जो हिंसा हुई, वह अचानक भड़का हुआ दंगा नहीं था, बल्कि लंबे समय से बोए गए सांप्रदायिक नफ़रत के बीजों का परिणाम था। इस पूरी प्रक्रिया में स्त्री की स्थिति दोहरे शोषण की थी।

राष्ट्र, धर्म और स्त्री की देह (Nation, Religion, and the Female Body)

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को सदैव समुदाय, परिवार और राष्ट्र की 'इज़्ज़त' (Honor) के रूप में देखा जाता है। जब दो राष्ट्रों (भारत और पाकिस्तान) या दो धर्मों के बीच वर्चस्व की लड़ाई हुई, तो इस 'इज़्ज़त' को नष्ट करना सबसे बड़ी जीत मान ली गई। स्त्रियों का अपहरण, बलात्कार, उनके वक्षों को काटना, या उनके शरीर पर 'पाकिस्तान ज़िंदाबाद' अथवा 'जय हिंद' गोदवा देना केवल कामुकता (Lust) का परिणाम नहीं था; यह एक सोची-समझी राजनीतिक और सांप्रदायिक रणनीति थी, जिसका उद्देश्य दूसरे समुदाय की आने वाली नस्लों को दूषित करना और उनके मनोबल को सदा के लिए तोड़ना था।

'सम्मान' के नाम पर शहादत (Martyrdom in the name of 'Honor')

त्रासदी का एक पक्ष यह भी था कि स्त्रियों को केवल दूसरे समुदाय ने नहीं मारा, बल्कि कई मामलों में उनके अपने ही पिताओं, पतियों और भाइयों ने उन्हें मौत के घाट उतार दिया। इसे 'धर्म की रक्षा' या 'सम्मान की रक्षा' का नाम दिया गया। रावलपिंडी के कई गाँवों में सिख स्त्रियों द्वारा अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए कुओं में कूदकर सामूहिक आत्मदाह करने की घटनाएँ इतिहास में दर्ज हैं। भीष्म साहनी का 'तमस' इन घटनाओं का अत्यंत मार्मिक और यथार्थपरक चित्रण करता है। यह पितृसत्ता का चरम क्रूर रूप था, जहाँ स्त्री को जीवन का अधिकार केवल तब तक था, जब तक वह 'पवित्र' थी।

प्रमुख विभाजन केंद्रित उपन्यास: एक संक्षिप्त परिदृश्य (Key Partition-Centric Novels: A Brief Overview)

विभाजन की इस अमानवीय विभीषिका और स्त्री की त्रासदी को अनेक रचनाकारों ने अपने उपन्यासों का विषय बनाया। प्रस्तुत शोध पत्र मुख्य रूप से निम्नलिखित उपन्यासों के इर्द-गिर्द केंद्रित रहेगा:

- **'झूठा सच' (यशपाल):** यह दो भागों ('वतन और देश' तथा 'देश का भविष्य') में लिखा गया महाकाव्यात्मक उपन्यास है। इसमें तारा, बंती, और पूरो जैसी स्त्रियों के माध्यम से विस्थापन, अपहरण और शरणार्थी शिविरों की त्रासदी के साथ-साथ स्त्री के स्वावलंबी होने के संघर्ष को अत्यंत विस्तार से दर्शाया गया है।
- **'तमस' (भीष्म साहनी):** यह उपन्यास विभाजन से ठीक पहले के सांप्रदायिक तनाव (१९४६-४७) का चित्रण है। इसमें हरनाम सिंह की पत्नी बंतो और सिख स्त्रियों के कुएँ में कूदकर जान देने के प्रसंग स्त्री जीवन की विवशता और त्रासदी को उभारते हैं।
- **'पिंजर' (अमृता प्रीतम):** यद्यपि यह मूलतः पंजाबी उपन्यास है, किंतु हिंदी में इसका व्यापक प्रभाव है। यह 'पूरो' (हमदा) की कहानी है, जो अपहरण के बाद अपने परिवार द्वारा अस्वीकार कर दी जाती है। यह उपन्यास स्त्री की अस्मिता, उसके शरीर पर उसके अधिकार और पितृसत्ता की दोहरी नैतिकता पर सबसे गहरा प्रहार है।
- **'कितने पाकिस्तान' (कमलेश्वर):** इस उपन्यास में समय और स्थान की सीमाओं को लांघकर विभाजन की त्रासदी को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में देखा गया है, जहाँ विभाजन के कारण विस्थापित हुई स्त्रियों का दर्द अदालत में पेश होता है।

स्त्री देह : सांप्रदायिक प्रतिशोध का रणक्षेत्र (Female Body: The Battlefield of Communal Revenge)

विभाजन केंद्रित उपन्यासों का सबसे पीड़ादायक पहलू वह है जहाँ स्त्री की देह को एक 'वस्तु' (Object) और युद्ध के 'मैदान' में बदल दिया गया। दंगाइयों के लिए स्त्री कोई जीवित मनुष्य नहीं थी, बल्कि वह उस समुदाय की इज़्ज़त थी जिसे वे मिट्टी में मिलाना चाहते थे। इस सांप्रदायिक प्रतिशोध में स्त्री की अस्मिता का जिस क्रूरता से हनन हुआ, उसका अत्यंत यथार्थपरक चित्रण यशपाल, भीष्म साहनी और अमृता प्रीतम के उपन्यासों में मिलता है।

अपहरण, बलात्कार और अमानवीयता (Abduction, Rape, and Inhumanity)

यशपाल के 'झूठा सच' में 'तारा' का चरित्र विभाजन के दौरान स्त्री की इस अमानवीय त्रासदी का सबसे ज्वलंत उदाहरण है। तारा एक शिक्षित और प्रगतिशील विचारों वाली लड़की है, लेकिन विभाजन के दौरान लाहौर में फैले दंगों में उसका अपहरण कर लिया जाता है। उसे एक के बाद एक कई पुरुषों को बेचा जाता है। हाफ़िज़ इनायत अली से लेकर सोमराज तक, हर कोई उसके शरीर को नोचता है। तारा की यह त्रासदी दर्शाती है कि सांप्रदायिक उन्माद में जब मनुष्य पशु बन जाता है, तो उसकी कामुकता और नफ़रत का सबसे पहला शिकार स्त्री ही होती है। तारा का अपहरण केवल एक व्यक्ति का अपराध नहीं है; यह उस पूरी व्यवस्था का अपराध है जिसने धर्म की आड़ में स्त्री को लूटने की वैधता प्रदान कर दी थी।

शरीर पर धार्मिक चिन्हों का अंकन (Marking Religious Symbols on the Body)

विभाजन के दौरान स्त्रियों के शरीर पर सांप्रदायिक नारे या धार्मिक चिह्न गोदने की घटनाएँ अत्यंत आम थीं। यह देह पर क़ब्ज़ा करने की हिंसक मानसिकता थी। साहित्य में इस क्रूरता को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ उकेरा गया है। कमलेश्वर के 'कितने पाकिस्तान' और सआदत हसन मंटो की कहानियों

(यद्यपि मंटो की विधा कहानी है, किंतु उनका प्रभाव उपन्यासों पर स्पष्ट है) में ऐसे प्रसंग आते हैं जहाँ स्त्रियों के वक्षों को काट दिया गया या उनके शरीर पर 'जय हिंद' अथवा 'पाकिस्तान ज़िंदाबाद' गोद दिया गया। यह स्त्री की निजता का चरम हनन था, जहाँ उसकी देह को एक राजनीतिक और भौगोलिक नक्शे में तब्दील कर दिया गया, जिस पर हर कोई अपना झंडा गाड़ना चाहता था।

'सम्मान' के नाम पर शहादत: पितृसत्ता की क्रूरता (Martyrdom for 'Honor': Cruelty of Patriarchy)

विभाजन के उपन्यासों में स्त्री त्रासदी का एक और भयावह पहलू वह है, जहाँ स्त्रियों को दूसरे समुदाय के दंगाइयों से नहीं, बल्कि अपने ही पिताओं, पतियों और भाइयों के हाथों मरना पड़ा। इसे 'धर्म और इज़्ज़त की रक्षा' का नाम दिया गया। पितृसत्तात्मक समाज में यह माना जाता है कि यदि स्त्री भ्रष्ट हो गई (अर्थात उसका शीलभंग हो गया), तो पूरे कुल और धर्म का नाश हो जाएगा। इसलिए, स्त्रियों के छले जाने या अपहृत होने से बेहतर उनकी मृत्यु को माना गया।

सामूहिक आत्मदाह और कुओं में कूदती स्त्रियाँ (Mass Suicide and Women Jumping into Wells)

भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' इस त्रासदी का सबसे मार्मिक दस्तावेज़ है। उपन्यास में सैयदपुर गाँव का दृश्य रोंगटे खड़े कर देने वाला है। जब गाँव को मुस्लिम दंगाइयों द्वारा घेर लिया जाता है और सिखों को अपनी हार सुनिश्चित लगने लगती है, तो सिख स्त्रियाँ अपनी 'इज़्ज़त' बचाने के लिए गुरुद्वारे के पास स्थित कुएँ में कूदकर सामूहिक आत्मदाह कर लेती हैं। जसबीर और अन्य स्त्रियाँ 'सत श्री अकाल' का नारा लगाते हुए एक-एक कर कुएँ में छलांग लगा देती हैं। साहनी जी लिखते हैं कि कुआँ लाशों से भर गया और पानी का रंग लाल हो गया। यह दृश्य पितृसत्ता की उस अमानवीयता को उजागर करता है, जहाँ स्त्री की जान से अधिक महत्व उसकी 'पवित्रता' को दिया गया।

यहाँ आपके दिए गए टेक्स्ट का शुद्ध और सही **यूनिकोड (Unicode - Mangal Font)** रूप दिया गया है:

अपने ही रक्षकों द्वारा हत्या (Killed by Their Own Protectors)

'तमस' में ही और विभाजन के कई अन्य संस्मरणों में यह दर्शाया गया है कि जब स्त्रियों ने स्वयं कुएँ में कूदने से डर महसूस किया, तो उनके पतियों या पिताओं ने अपनी ही तलवारों से उनके सिर धड़ से अलग कर दिए। इसे समाज ने 'शौर्य' (Heroism) और 'शहादत' की संज्ञा दी। लेकिन साहित्यकार इस शौर्य के पीछे छिपी पितृसत्तात्मक कायरता पर सवाल उठाते हैं। स्त्री से यह कभी नहीं पूछा गया कि वह मरना चाहती है या नहीं। उसका शरीर चूँकि पुरुष की 'संपत्ति' था, इसलिए उस संपत्ति को नष्ट करने का अधिकार भी पुरुष ने अपने पास ही रखा। यह विभाजन के दौरान स्त्री जीवन की एक ऐसी मूक त्रासदी थी, जिसे बहुत बाद में स्त्रीवादी साहित्यकारों ने विमर्श का विषय बनाया।

विस्थापन और शरणार्थी शिविरों का नरक (Displacement and the Hell of Refugee Camps)

विभाजन के कारण सदियों से एक ही ज़मीन पर बसे लोग रातों-रात बेघर (Homeless) हो गए। अपने घर, आँगन, और परिवेश से उखड़ने की पीड़ा पुरुषों की तुलना में स्त्रियों के लिए अधिक गहरी थी, क्योंकि उनका पूरा संसार उसी घर के इर्द-गिर्द बुना होता था। जो स्त्रियाँ किसी प्रकार अपनी जान बचाकर सीमा पार (भारत या पाकिस्तान) पहुँचने में सफल रहीं, उनकी त्रासदी यहीं समाप्त नहीं हुई।

बेघर होने का मनोवैज्ञानिक आघात (Psychological Trauma of Homelessness)

राही मासूम रज़ा के 'आधा गाँव' में गंगौली गाँव की मुस्लिम स्त्रियों का दर्द अत्यंत मार्मिक है। उनके लिए पाकिस्तान का अर्थ कोई राजनीतिक आज़ादी नहीं था,

बल्कि वह उनके लिए अपने पुरखों की कब्रों, अपने त्योहारों (मुहर्रम) और अपने आँगन से बिछड़ने का परवाना था। फुन्नन मियाँ की पत्नी और गाँव की अन्य स्त्रियाँ विभाजन की इस अमूर्त रेखा को समझ ही नहीं पातीं कि जो घर कल तक उनका था, आज वह पराया कैसे हो गया।

शिविरों में शोषण (Exploitation in Refugee Camps)

विस्थापित होकर भारत या पाकिस्तान आए लोगों को शरणार्थी शिविरों (Refugee Camps) में रखा गया। उपन्यासों में यह स्पष्ट चित्रित है कि ये शिविर भी स्त्रियों के लिए सुरक्षित नहीं थे। यशपाल के 'झूठा सच' में जालंधर और दिल्ली के शरणार्थी शिविरों का यथार्थवादी वर्णन है। भूख, बीमारी और बेबसी के बीच स्त्रियों का वहाँ भी आर्थिक और शारीरिक शोषण हुआ। कई अनाथ लड़कियों और विधवाओं को राशन या सुरक्षा के बदले कैंप अधिकारियों और रसूखदार लोगों के सामने अपनी देह सौंपने के लिए विवश होना पड़ा। जो समाज कल तक उनकी इज़्ज़त के लिए मरने-मारने पर उतारू था, वही समाज शरणार्थी शिविरों में उनकी लाचारी का फ़ायदा उठा रहा था।

'पुनर्वास' की दोहरी विडंबना और पितृसत्ता का क्रूर चेहरा (The Double Irony of Rehabilitation and the Cruel Face of Patriarchy)

विभाजन के उपरांत भारत और पाकिस्तान की सरकारों के बीच एक समझौता हुआ, जिसे 'अपहृत व्यक्तियों की रिकवरी और पुनर्वास अधिनियम' (Recovery of Abducted Persons Act, 1949) कहा गया। इसके तहत दोनों देशों ने तय किया कि जो स्त्रियाँ दंगों के दौरान अपहृत रह गई हैं, उन्हें खोजकर उनके मूल परिवारों को लौटाया जाएगा। कागज़ पर यह एक मानवीय कदम प्रतीत होता था, किंतु यथार्थ के धरातल पर इसने स्त्रियों के लिए एक नई और अधिक भयानक त्रासदी को जन्म दिया। विभाजन केंद्रित उपन्यासों ने पुनर्वास की इस सरकारी नीति के पीछे छिपी पितृसत्तात्मक दोहरी नैतिकता को पूरी नग्नता के साथ उजागर किया है।

अपवित्र मानकर परिवार द्वारा अस्वीकार (Rejection by Families as 'Impure')

जब पुलिस या सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा अपहृत स्त्रियों को खोजकर उनके परिवारों (पतियों या पिताओं) के पास वापस लाया गया, तो अधिकांश हिंदू और सिख परिवारों ने उन्हें अपनाने से साफ़ इंकार कर दिया। तर्क यह था कि वे स्त्रियाँ मुसलमानों के घर रह चुकी हैं, उनका 'धर्मभ्रष्ट' हो चुका है और अब वे अपवित्र (Defiled) हैं। जो समाज स्त्रियों के शरीर को अपनी 'इज़्ज़त' मानता था, उसी समाज ने उन स्त्रियों को कूड़े की तरह फेंक दिया, जिनका अपहरण स्वयं उसी समाज की कायरता और सुरक्षा देने में विफलता का परिणाम था। पुरुष की हार की सज़ा भी अंततः स्त्री को ही भुगतनी पड़ी। वे स्त्रियाँ न तो उस समाज की रहीं जहाँ से उनका अपहरण हुआ था, और न ही उस परिवार की रहीं जो उनका अपना था। यह स्त्री के लिए 'त्रिशंकु' जैसी स्थिति थी।

राज्य (State) का स्त्री की इच्छा पर एकाधिकार

पुनर्वास प्रक्रिया की दूसरी विडंबना यह थी कि सरकारों ने यह निर्णय लेते समय अपहृत स्त्रियों की इच्छा (Consent) कभी नहीं पूछी। कई स्त्रियाँ (जिनका अपहरण हुआ था) समय बीतने के साथ अपने अपहरणकर्ताओं के साथ रहने को विवश हो गई थीं, कुछ गर्भवती थीं या उनके बच्चे हो चुके थे। जब रिकवरी टीमें उन्हें जबरन वापस ले जाने लगीं, तो यह उनके लिए दूसरा विस्थापन था। उपन्यासकार यह प्रश्न उठाते हैं कि राज्य और पितृसत्ता ने स्त्री को केवल एक 'वस्तु' समझा, जिसे एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर रखा जा सकता है, बिना उसके मन के घावों की परवाह किए।

'पिंजर' (अमृता प्रीतम): अस्मिता का संकट और स्त्री की चीत्कार (Crisis of Identity and the Cry of Women in 'Pinjar')

स्त्री की अस्मिता के संकट और परिवार द्वारा अस्वीकार किए जाने की त्रासदी का सबसे प्रामाणिक, मार्मिक और विश्वस्तरीय चित्रण अमृता प्रीतम के उपन्यास 'पिंजर' में मिलता है। यद्यपि इस उपन्यास की पृष्ठभूमि विभाजन से कुछ समय पूर्व की है, लेकिन इसकी परिणति विभाजन की विभीषिका में ही होती है।

'पूरो' से 'हमीदा' बनने की पीड़ा (The Agony of Becoming Hamida from Puro)

उपन्यास की नायिका पूरो एक हिंदू लड़की है, जिसका अपहरण रशीद नामक एक मुस्लिम युवक अपनी पारिवारिक दुश्मनी (प्रतिशोध) का बदला लेने के लिए करता है। पूरो किसी तरह रशीद के चंगुल से भागकर अपने माता-पिता के घर पहुँचती है। लेकिन यहाँ पितृसत्ता का सबसे भयानक चेहरा सामने आता है। पूरो के माता-पिता उसे घर में प्रवेश करने से रोक देते हैं। उसका पिता कहता है यह दृश्य साहित्य के सबसे त्रासद दृश्यों में से एक है। जिस घर के आँगन में वह खेली-कूदी, वही घर उसकी 'अपवित्रता' के कारण उसके लिए बंद हो जाता है। पूरो को विवश होकर वापस अपने अपहरणकर्ता रशीद के पास लौटना पड़ता है। वहाँ उसके शरीर पर इस्लाम के चिह्न थोपे जाते हैं और 'पूरो' का नाम बदलकर 'हमीदा' कर दिया जाता है।

'पिंजर' का रूपक : मृत आत्मा का शरीर (The Metaphor of 'Pinjar')

'पिंजर' का शाब्दिक अर्थ है अस्थिपंजर (Skeleton)। यह उपन्यास का शीर्षक केवल एक शब्द नहीं, बल्कि उस समय की स्त्री की स्थिति का सबसे सटीक रूपक है। जब पूरो का परिवार उसे ठुकरा देता है, तो उसके भीतर की आत्मा मर जाती है। वह केवल एक 'पिंजर' (हड्डियों का ढांचा) बनकर रशीद के घर में रहती है। वह रशीद के बच्चे को जन्म देती है, लेकिन वह बच्चा उसे अपने ही शोषण का जीवंत प्रमाण लगता है। अमृता प्रीतम लिखती हैं कि स्त्री का अपना कोई धर्म या देश नहीं होता; वह केवल उस पुरुष के धर्म से पहचानी जाती है, जिसका उस पर क़ब्ज़ा होता है। 'पिंजर' पितृसत्तात्मक समाज के मुँह पर एक करारा तमाचा है, जो इज़्ज़त के नाम पर अपनी ही बेटियों की बलि चढ़ा देता है।

'झूठा सच' (यशपाल): तारा की नियति और समाज का दोहरा मापदंड (Tara's Destiny and Society's Double Standards)

यशपाल का महाकाव्यात्मक उपन्यास 'झूठा सच' स्त्री त्रासदी को केवल अपहरण तक सीमित नहीं रखता, बल्कि वह आज़ादी के बाद भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति का एक अत्यंत व्यापक और यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करता है।

सोमराज का चरित्र : विवाह के आवरण में क्रूरता

उपन्यास में तारा का विवाह विभाजन से ठीक पहले सोमराज नामक युवक से होता है। सोमराज एक क्रूर और शराबी व्यक्ति है, जो सुहागरात के दिन ही तारा के साथ पाशविक व्यवहार (Marital Rape) करता है। यशपाल यहाँ यह स्थापित करते हैं कि स्त्री के लिए त्रासदी केवल मुस्लिम दंगाइयों के रूप में नहीं आई थी; उसका अपना हिंदू पति और वैवाहिक संस्था भी उसके लिए किसी यातना-गृह से कम नहीं थी। धर्म कोई भी हो, स्त्री के प्रति पुरुष का रवैया शोषक का ही होता है।

तारा की घर वापसी और समाज का तिरस्कार

जब तारा तमाम यातनाएँ सहकर, अपना शीलभंग होने के बाद, किसी तरह जान बचाकर भारत (दिल्ली) पहुँचती है, तो उसे उम्मीद होती है कि उसका भाई (जयदेव) और समाज उसे गले लगाएगा। लेकिन

भारत में भी उसे वही तिरस्कार झेलना पड़ता है जो 'पिंजर' की पूरो ने झेला था। लोग उसे सहानुभूति की दृष्टि से नहीं, बल्कि 'भ्रष्ट' और 'जूठी' स्त्री की दृष्टि से देखते हैं। यहाँ तक कि वह स्वयं अपने अस्तित्व को लेकर अपराधबोध से ग्रसित हो जाती है। यशपाल इस उपन्यास के माध्यम से उस 'झूठे सच' को अनावृत करते हैं जहाँ देश तो आज़ाद हो गया था, लेकिन स्त्री आज भी पितृसत्ता और झूठी सामाजिक मर्यादाओं की गुलाम थी।

अमानवीयता के बीच पनपते मानवीय रिश्ते (Humanistic Relationships Amidst Inhumanity)

विभाजन का साहित्य केवल क्रूरता और रक्तपात का आख्यान नहीं है; यह उस अंधकार के बीच टिमटिमाते मानवीय संवेदनाओं (Humanity) और करुणा (Compassion) के दीपकों का भी दस्तावेज़ है। उपन्यासकारों ने स्पष्ट किया है कि जब धर्म के नाम पर मनुष्य पशु बन गया था, तब भी कुछ लोग ऐसे थे जिन्होंने इंसानियत का दामन नहीं छोड़ा।

रशीद का पश्चाताप और पूरो के प्रति प्रेम (Rashid's Repentance in 'Pinjar')

'पिंजर' का रशीद केवल एक क्रूर अपहरणकर्ता नहीं है। वह पितृसत्तात्मक पारिवारिक दबाव में पूरो का अपहरण तो कर लेता है, लेकिन उसके बाद वह जीवन भर गहरे अपराधबोध (Guilt) में जीता है। वह पूरो (हमीदा) से सच्चा प्रेम करता है और उसकी हर संभव ख़ुशी का ध्यान रखने का प्रयास करता है। जब पूरो का भाई अपनी अपहृत मंगेतर लाजो को वापस लेने आता है, तो रशीद ही अपनी जान पर खेलकर लाजो को खोज निकालता है। रशीद का यह चारित्रिक रूपांतरण विभाजन के साहित्य का एक अत्यंत मानवीय और मनोवैज्ञानिक पक्ष है, जो यह दर्शाता है कि बुराई किसी धर्म विशेष में नहीं, बल्कि परिस्थितियों में होती है।

'तमस' में हरनाम सिंह और बंतो की जान बचाते मुस्लिम पात्र

भीष्म साहनी के 'तमस' में जब बूढ़े सिख दंपत्ति (हरनाम सिंह और बंतो) दंगाइयों से अपनी जान बचाकर भाग रहे होते हैं, तो उन्हें एक मुस्लिम परिवार (एहसान अली का परिवार) अपने घर में पनाह देता है। वे जानते हैं कि यदि दंगाइयों को पता चला कि उन्होंने सिखों को शरण दी है, तो उनकी भी हत्या हो सकती है, फिर भी वे इंसानियत का फ़र्ज़ निभाते हैं। इसी प्रकार, उपन्यास में रज्जो नामक एक मुस्लिम स्त्री हरनाम सिंह और बंतो की मदद करती है। ये प्रसंग सिद्ध करते हैं कि स्त्री जीवन की त्रासदी के उस भीषण दौर में भी, कुछ स्त्रियों और पुरुषों ने अपने जीवन को दांव पर लगाकर मानवीय मूल्यों को जीवित रखा।

स्त्री का संघर्ष और अदम्य जिजीविषा (Women's Struggle and Indomitable Resilience)

विभाजन केंद्रित उपन्यासों का अध्ययन करते हुए यदि हम स्त्री को केवल एक 'पीड़ित' (Victim) या 'असहाय' पात्र के रूप में देखते हैं, तो यह इन रचनाओं का एकांगी मूल्यांकन होगा। इन उपन्यासों की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि ये भयंकर अमानवीयता और त्रासदी के बीच स्त्री की 'अदम्य जिजीविषा' (Survival Instinct) और उसके संघर्ष को प्रमुखता से रेखांकित करते हैं।

जब समाज, धर्म और परिवार—तीनों ने स्त्री को त्याग दिया, तब उसने अपने भीतर से एक नई शक्ति का सृजन किया। वह टूटी, बिखरी, लेकिन उसने हार नहीं मानी। परिस्थितियों ने उसे घर की चौखट से निकालकर एक कठोर यथार्थ के सामने खड़ा कर दिया, जहाँ उसे अपने अस्तित्व की लड़ाई स्वयं लड़नी थी।

'पिंजर' में पूरो का नैतिक संघर्ष और स्त्री-एकजुटता (Moral Struggle and Female Solidarity)

अमृता प्रीतम के 'पिंजर' में पूरो (हमीदा) भले ही शारीरिक और सामाजिक रूप से हार गई हो, लेकिन उसकी आत्मा और उसका नैतिक साहस कभी नहीं मरता। जब उसे पता चलता है कि उसके भाई (रामचंद) की मंगेतर 'लाजो' का भी उसी गाँव में अपहरण हो गया है, तो पूरो अपने अतीत के सारे घावों को भूलकर लाजो को बचाने का संकल्प लेती है।

वह रशीद की मदद से अपनी जान पर खेलकर लाजो को खोजती और उसे सुरक्षित उसके परिवार तक पहुँचाती है। यहाँ पूरो का यह कृत्य केवल एक पारिवारिक कर्तव्य नहीं है; यह एक स्त्री द्वारा दूसरी स्त्री की पीड़ा को समझने और पितृसत्तात्मक क्रूरता के खिलाफ एक मूक लेकिन अत्यंत सशक्त स्त्री-एकजुटता (Female Solidarity) का प्रतीक है। जो त्रासदी पूरो ने झेली, वह नहीं चाहती कि लाजो भी वही जीवन जिए। अंत में, जब रामचंद पूरो को भी वापस ले जाने का प्रस्ताव देता है, तो पूरो इनकार कर देती है। उसका यह निर्णय उसकी हार नहीं, बल्कि उसकी उस परिपक्वता और जिजीविषा का परिचायक है जहाँ वह अपने वर्तमान (रशीद और अपने बच्चे) को स्वीकार कर एक नई शुरुआत करती है।

आर्थिक स्वावलंबन और नई अस्मिता की खोज (Economic Self-Reliance and the Search for a New Identity)

विभाजन की त्रासदी का एक विरोधाभासी लेकिन सकारात्मक परिणाम यह भी निकला कि इसने सदियों से घर की चारदीवारी में कैद मध्यवर्गीय और निम्न-मध्यवर्गीय स्त्रियों को बाहर निकलने और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के लिए विवश कर दिया। जब परिवारों के पुरुष सदस्य मारे गए या बेरोजगार हो गए, तो शरणार्थी शिविरों से निकलकर स्त्रियों ने आजीविका का साधन खोजना शुरू किया।

'झूठा सच' की 'तारा': पीड़ा से स्वावलंबन तक की यात्रा

यशपाल के 'झूठा सच' में तारा का चरित्र हिंदी साहित्य में स्त्री-स्वावलंबन (Women's Empowerment) का एक अत्यंत शक्तिशाली रूपक है। लाहौर में अपहृत होने, अनगिनत बार बलात्कार का शिकार होने और अंततः भारत पहुँचने के बाद, तारा किसी कोने में बैठकर अपने भाग्य को नहीं कोसती। जब उसका अपना परिवार और समाज उसे 'जूठी' कहकर तिरस्कृत करता है, तो तारा रोने-गिड़गिड़ाने के बजाय अपनी शिक्षा को अपना हथियार बनाती है।

वह आगे की पढ़ाई करती है, नौकरी प्राप्त करती है और आर्थिक रूप से पूरी तरह स्वतंत्र हो जाती है। उपन्यास के दूसरे भाग ('देश का भविष्य') में तारा एक सशक्त, आत्मविश्वासी और आत्मनिर्भर स्त्री के रूप में उभरती है। जब उसका क्रूर और शोषक पति सोमराज (जो अब भारत में एक बड़ा नेता बन चुका है) उस पर अपना वैधानिक अधिकार जताने आता है, तो तारा उसे पूरी दृढ़ता से नकार देती है। तारा की यह यात्रा केवल एक स्त्री की सफलता की कहानी नहीं है, बल्कि यह इस बात की घोषणा है कि स्त्री की अस्मिता केवल उसकी देह या योनि तक सीमित नहीं है। उसका मस्तिष्क, उसकी शिक्षा और उसका आर्थिक स्वावलंबन उसे समाज में एक नई और अधिक गरिमामयी पहचान दिला सकते हैं।

'बंती' का संघर्ष और यथार्थवाद

'झूठा सच' में ही एक अन्य पात्र है 'बंती'। तारा जहाँ शिक्षित वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, वहीं बंती एक साधारण, कम पढ़ी-लिखी स्त्री है। वह शरणार्थी शिविरों के नारकीय जीवन से निकलकर अपने बच्चों का पेट पालने के लिए सड़कों पर पापड़-बड़ियाँ बेचती है, सिलाई-कढ़ाई करती है। बंती का यह संघर्ष न लाखों अनाम विस्थापित स्त्रियों का संघर्ष है, जिन्होंने विभाजन के बाद अपने पसीने से एक नए भारत और अपने परिवारों का निर्माण किया।

मातृत्व का मनोवैज्ञानिक द्वंद्व और स्वीकार (Psychological Conflict and Acceptance of Motherhood)

विभाजन के दौरान हुए बलात्कारों का एक अत्यंत पीड़ादायक परिणाम अवांछित गर्भधारण (Unwanted Pregnancies) था। अपहृत स्त्रियों के सामने यह एक भयानक मनोवैज्ञानिक द्वंद्व था कि वे उस बच्चे को कैसे स्वीकार करें, जिसके पिता ने उनके साथ पाशविक व्यवहार किया और उनके पूरे परिवार को नष्ट कर दिया। यह बच्चा उनके लिए अपने ही शरीर पर हुए अत्याचार का एक जीता-जागता स्मारक था।

घृणा से वात्सल्य तक का सफ़र

उपन्यासों में इस द्वंद्व का अत्यंत मार्मिक चित्रण हुआ है। शुरुआत में स्त्रियाँ अपने गर्भ में पल रहे इन बच्चों से नफ़रत करती हैं, उन्हें मार देना चाहती हैं। 'पिंजर' में पूरो जब रशीद के बच्चे को जन्म देती है, तो उसे उस बच्चे से कोई लगाव महसूस नहीं होता; वह उसे अपने 'पिंजर' (कंकाल) को नोंच खाने वाला एक जीव मानती है।

किंतु धीरे-धीरे स्त्री के भीतर का 'मातृत्व' उस सांप्रदायिक और सामाजिक घृणा पर विजय प्राप्त कर लेता है। वह यह समझती है कि यह बच्चा हिंदू या मुसलमान नहीं है, वह केवल उसका अपना अंश है। समाज भले ही उस बच्चे को 'हराम का' या 'दंगाइयों का खून' कहे, लेकिन स्त्री अपनी करुणा से उस बच्चे को अपना लेती है। यह मातृत्व का उदात्तीकरण (Sublimation) है, जो मनुष्य के भीतर छिपी सर्वोच्च मानवीयता का प्रमाण है।

विस्थापित समाज में टूटते मूल्य और स्त्री का नया यथार्थ (Crumbling Values in Displaced Society and the New Reality for Women)

विस्थापन ने केवल भौगोलिक सीमाएँ नहीं बदलीं, बल्कि इसने पुरानी सामाजिक संरचनाओं और सामंती मूल्यों को भी छिन्न-भिन्न कर दिया। उपन्यासों में चित्रित है कि विभाजन से पहले जो परिवार अपनी बेटियों को पर्दा कराते थे या उन्हें अकेले घर से बाहर नहीं निकलने देते थे, वही परिवार शरणार्थी शिविरों में अपनी बेटियों को राशन की कतारों में खड़े होने या नौकरी खोजने के लिए भेजने लगे।

देह के आवरण से परे की पहचान

कमलेश्वर के 'कितने पाकिस्तान' और यशपाल के उपन्यासों में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि विस्थापन के इस झटके ने स्त्री को उस 'पवित्रता' के मिथक से बाहर निकाला, जिसे पितृसत्ता ने उस पर थोप रखा था। जब जीवन और अस्तित्व ही संकट में हो, तो झूठी मर्यादाएँ और रूढ़ियाँ बेमानी हो जाती हैं। विभाजन के बाद की स्त्री (विशेषकर शरणार्थी स्त्री) अधिक यथार्थवादी, अधिक कठोर और अधिक व्यावहारिक हो गई। उसने समझ लिया कि समाज के जो आदर्श और मूल्य (धर्म, राष्ट्र, मर्यादा) किताबों में लिखे हैं, वे संकट के समय सबसे पहले स्त्री की ही बलि मांगते हैं। इसलिए, उसने अपने नए मूल्य स्वयं गढ़े, जहाँ उसका स्व-अस्तित्व (Self-existence) सर्वोपरि था।

समकालीन स्त्री विमर्श और विभाजन साहित्य की प्रासंगिकता (Contemporary Feminist Discourse and Relevance of Partition Literature)

विभाजन केंद्रित उपन्यासों का मूल्यांकन यदि आज के आधुनिक स्त्री विमर्श (Feminist Discourse) और सबाल्टर्न स्टडीज (उपाश्रित अध्ययन) के आलोक में किया जाए, तो इनकी प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है। ये उपन्यास केवल एक ऐतिहासिक घटना का प्रलेखन नहीं हैं, बल्कि ये जेंडर (Gender), राष्ट्र (Nation) और सत्ता (Power) के अंतर्संबंधों की अत्यंत जटिल और सूक्ष्म मीमांसा प्रस्तुत करते हैं।

'इज़्ज़त' (Honor) के मिथक का विखंडन (Deconstruction of the Myth of Honor)

पितृसत्तात्मक समाज का सबसे बड़ा हथियार 'इज़्ज़त' की अवधारणा है, जिसे उसने स्त्री की देह (विशेषकर उसकी योनि) में स्थापित कर रखा है। यशपाल, अमृता प्रीतम और भीष्म साहनी जैसे रचनाकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से इस खोखले मिथक को पूरी तरह से विखंडित (Deconstruct) कर दिया है। आधुनिक स्त्री विमर्श यह मानता है कि 'इज़्ज़त' कोई शारीरिक वस्तु नहीं है जिसे लूटा जा सके। 'झूठा सच' की तारा और 'पिंजर' की पूरो यह सिद्ध करती हैं कि बलात्कार स्त्री का चारित्रिक पतन नहीं, बल्कि यह उस पुरुष और उस समाज का पतन है जो इस कुकृत्य को अंजाम देता है। इन पात्रों ने समाज को यह सोचने पर विवश किया कि स्त्री का सम्मान उसकी देह में नहीं, बल्कि उसके स्वाभिमान, उसके कर्म और उसके वैचारिक अस्तित्व में है।

मूक इतिहास को स्वर (Voicing the Silent History)

उर्वशी बुटालिया ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द अदर साइड ऑफ़ साइलेंस' (The Other Side of Silence) में स्पष्ट किया है कि भारत-पाक विभाजन का आधिकारिक इतिहास केवल राजनेताओं, वायसरायों और समझौतों का इतिहास है। उसमें उन लाखों स्त्रियों की चीखें दर्ज नहीं हैं, जिन्हें सीमाओं के दोनों ओर नंगा घुमाया गया या कुओं में धकेल दिया गया। विभाजन के उपन्यासों ने इतिहास के इस खालीपन को भरा है।

निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विस्तृत अध्ययन एवं समीक्षात्मक विश्लेषण के आधार पर भारत-पाक विभाजन केंद्रित उपन्यासों में चित्रित स्त्री जीवन की त्रासदी, संघर्ष और मानवीय पक्ष के संदर्भ में निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं:

१. देह का राजनीतिकरण (Politicization of the Female Body):

विभाजन के दौरान स्त्री केवल एक मानव नहीं थी, बल्कि वह धर्म, समुदाय और राष्ट्र के 'गर्व' और 'प्रतिशोध' का प्रतीक (Symbol) बन गई थी। उपन्यासों ने अत्यंत यथार्थपरक ढंग से यह उद्घाटित किया है कि सांप्रदायिक उन्माद में स्त्री की देह को युद्ध के मैदान की तरह इस्तेमाल किया गया। अपहरण, बलात्कार और अंग-भंग जैसी क्रूरताएँ महज़ शारीरिक अपराध नहीं, बल्कि एक समुदाय द्वारा दूसरे समुदाय को मनोवैज्ञानिक रूप से परास्त करने के राजनीतिक कृत्य थे।

२. पितृसत्ता का क्रूरतम और नग्न स्वरूप:

इन रचनाओं ने बाहरी शत्रुओं (दंगाइयों) के साथ-साथ घर के भीतर बैठी पितृसत्ता के क्रूरतम स्वरूप को बेनकाब किया है। 'सम्मान' के नाम पर स्त्रियों को कुएँ में कूदने के लिए विवश करना या अपने ही हाथों अपनी बेटियों के सिर काट देना, यह सिद्ध करता है कि पुरुषवादी समाज में स्त्री के जीवन का मूल्य उसकी 'तथाकथित पवित्रता' से कम था।

३. पुनर्वास की विडंबना और त्रिशंकु स्थिति:

विभाजन का साहित्य राज्य (State) और समाज के दोहरे मापदंडों पर करारा प्रहार करता है। सरकारों द्वारा अपहृत स्त्रियों की इच्छा जाने बिना उन्हें वापस लाना और फिर उनके अपने ही हिंदू या सिख परिवारों द्वारा उन्हें 'अपवित्र' कहकर ठुकरा देना, स्त्री की एक ऐसी दोहरी त्रासदी थी, जिसने उसे न यहाँ का छोड़ा, न वहाँ का। 'पिंजर' की पूरो इसका सबसे जीवंत और त्रासद उदाहरण है।

४. त्रासदी से स्वावलंबन तक की यात्रा (From Tragedy to Empowerment):

इन उपन्यासों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इन्होंने स्त्री को केवल एक 'रोती-बिलखती अबला' तक सीमित नहीं रखा। 'झूठा सच' की तारा जैसे चरित्र यह बताते हैं कि विभाजन के विस्थापन ने यद्यपि स्त्रियों का सब कुछ छीन लिया, लेकिन उसी विस्थापन

ने उन्हें चारदीवारी से बाहर निकालकर आर्थिक रूप से स्वावलंबी और मानसिक रूप से आज़ाद भी किया। यह त्रासदी के भीतर से जन्मी एक नई स्त्री-अस्मिता की खोज थी।

५. अदम्य जिजीविषा और मानवीय मूल्यों का संरक्षण:

घोर पाशविकता और रक्तपात के बीच भी स्त्री ने अपनी मानवीय संवेदनाओं को मरने नहीं दिया। अवांछित गर्भ से जन्मे बच्चों को अपनाना, 'पिंजर' में पूरो का लाजो को बचाना, और 'तमस' में रज्जो द्वारा दूसरे धर्म के लोगों को पनाह देना—ये सभी घटनाएँ स्त्री की अदम्य जिजीविषा और उसकी उस करुणा का प्रमाण हैं जो घृणा के अंधकार में भी प्रकाश बनकर चमकती है।

अंततः, विभाजन पर केंद्रित ये उपन्यास मात्र कथाएँ नहीं हैं, बल्कि ये मनुष्यता के माथे पर लगे कलंक का एक जीवंत दस्तावेज़ हैं। ये हमें चेतावनी देते हैं कि जब भी धर्म, राजनीति और कट्टरता का गठजोड़ होता है, तो उसका सबसे पहला और सबसे गहरा आघात स्त्री पर ही होता है। किंतु साथ ही, यह साहित्य स्त्री की अपराजेय शक्ति को भी सलाम करता है, जो राख के ढेर से भी फीनिक्स पक्षी की तरह फिर से उड़ान भरने की सामर्थ्य रखती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. **यशपाल.** (१९५८, १९६०). *झूठा सच* (भाग १: 'वतन और देश', भाग २: 'देश का भविष्य'). लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. **साहनी, भीष्म.** (१९७३). *तमस.* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. **प्रीतम, अमृता.** (१९५०). *पिंजर* (हिंदी अनुवाद). नागमणि प्रकाशन / राजपाल एंड संस, दिल्ली।
4. **रज़ा, राही मासूम.** (१९६६). *आधा गाँव.* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. **कमलेश्वर.** (२०००). *कितने पाकिस्तान.* राजपाल एंड संस, दिल्ली।
6. **मंटो, सआदत हसन.** *दस्तावेज़* (खंड १ से ५) (संपा. बलवंत सिंह). राजकमल प्रकाशन। (विभाजन की कहानियों के संदर्भ हेतु)।
7. **बुटालिया, उर्वशी.** (१९९८). *द अदर साइड ऑफ़ साइलेंस: वॉयसेस फ्रॉम द पार्टीशन ऑफ़ इंडिया* (The Other Side of Silence: Voices from the Partition of India). पेंगुइन बुक्स इंडिया।
8. **मेनन, रितु एवं भसीन, कमला.** (१९९८). *बॉर्डर्स एंड बाउंड्रीज़: विमेन इन इंडियाज पार्टीशन* (Borders & Boundaries: Women in India's Partition). काली फॉर विमेन, दिल्ली।
9. **यादव, डॉ. राजेंद्र.** *उपन्यास: स्वरूप और संवेदना.* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. **सिंह, डॉ. नामवर.** *आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ.* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
11. **जैन, निर्मला.** *हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी.* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
12. **पांडेय, ज्ञानेंद्र.** (२००१). *रिमेंबरिंग पार्टीशन: वायलेंस, नेशनलिज्म एंड हिस्ट्री इन इंडिया* (Remembering Partition: Violence, Nationalism and History in India). कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।